ESSENCE - International Journal for Environmental Rehabilitation and Conservation

Volume V: No. 2 2014 [102 – 104] [ISSN 0975 - 6272]

[www.essence-journal.com]

Proceedings of National Conference

"Environmental Conservation and Clean India Programme" December 2014, India

पर्यावरण और साहित्य में अन्तर्सम्बन्ध

Puja Pundir

Received: October 01, 2014 | **Accepted**: December 10, 2014 | **Online**: December 31, 2014

साहित्य और पर्यावरण का अन्तर्सम्बन्ध सृष्टि के आदिकाल से ही स्थापित रहा है। साहित्य पर्यावरण की छोटी से छोटी गतिविधियों को भी स्वयं में समाहित किये हुए है। वैदिक साहित्य से लेकर अद्यतन साहित्य तक पर्यावरण उसका अभिन्न अंग रहा है। पर्यावरण हमारे चारों ओर का वह परिवेश है जो हमें नित्य प्रभावित करता है। जो हमारे क्रियाकलापों के और हमारे दैनन्दिन कार्यों के एक प्रारूप को अत्यन्त संवेदनशीलता से आत्मसात करता है। आज का पर्यावरण मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि से अभिशापित हो गया है। यह जनसंख्या दिन प्रतिदिन पर्यावरण के प्रदूषण का कारण बनती जा रही है।

जनसंख्या जब पर्यावरण की अधिकतम वहन क्षमाता से अधिक हो जाती है तो यही स्थिति अतिरेक जनसंख्या को व्यक्त करती है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि निश्चित रूप से पर्यावरण को हानि पहुँचाती है। सामान्य अर्थ में पर्यावरण का आशय पौधों एवं पालतू जानवरों को समाहित करते हुए हमारे चारों ओर के समग्र संसार से है। व्यापक अर्थ में स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जैवमण्डल के द्वारा सामूहिक रूप से पर्यावरण का निर्माण हुआ है जिसके अन्तर्गत वायु, भूमि , जल, वन्य पक्षियों, मछलियों और वनों इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जो वातावरण के भौतिक संघटक है।

लेकिन महत्वपूर्ण सामाजिक एवं मानवी पक्षों यथा–मानवीय कल्याण, सामाजिक न्याय, सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, उपलब्ध व्यवसाय और स्वच्छ वातावरण को समाहित किये बिना पर्यावरण अपूर्ण है। भारत जैसे देश में जहां देश की एक बडी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है, इन पक्षों का महत्व और भी बढ जाता है। पर्यावरण को भिन्न–भिन्न वैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न नियमों एवं मतों के अनुसार परिभाषित किया है जिनमें इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका (1943–1973) के अनुसार सम्पूर्ण वाह्य प्रभाव, जो प्रकृति की भौतिक एवं जैवीय शक्तियों के रूप में वस्तुओं के समूह अथवा एकाकी वस्तु के प्रति सक्रिय है, पर्यावरण के अन्दर समाहित है जबकि स्अेनले (1966) के अनुसार पर्यावरण की रचना उन सभी वस्तुओं, दशाओं एवं शक्तियों द्वारा होती है जिनसे जीवित पदार्थ प्रभावित होता है तथा प्रतिक्रिया करता है। यद्यपि इसकी तीव्रता एवं दिशा परिवर्तनशील है।

For correspondence

Dept. of Hindi, J.V. Jain College, Saharanpur, India

अजनांकिकीय कारकों से युक्त तीव्र जनसंख्या वृद्धि निश्चित रूप से पर्यावरण को क्षति पहुंचाती है। उदाहरण स्वरूप लोगों के जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषि भूमि के घटने के फलस्वरूप पारिस्थिकी के संवेदनशील क्षेत्र वनों की कटाई होती है और अपर्दन की क्रिया में वृद्धि होती है। इसका तात्पर्य यह है कि बढती जनसंख्या के फलस्वरूप बढते खाद्यान्नों की मांग के कारण भूमि पर निरन्तर दबाव बढ़ता जा रहा है। कृषि भूमि की अधिकतम सीमा प्राप्त की जा चुकी है तथा इसमें वृद्धि नहीं की जा सकती है। अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन हेतु फसल उत्पादन की उन्नतिशील तकनीकी के साथ बडे पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक रसायनों का उपयोग प्रतिवर्ष किया जा रहा है। जिससे भावी पीढ़ी हेतु समुचित उपयोग एवं संरक्षण होना चाहिए। जनसंख्या की वर्तमान विस्फोटक वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न एवं औद्योगिक फसलों की सघन कृषि पर बल दिया जा रहा है। अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियों के कारण मृदा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है जो पोषक तत्वों एवं अन्य पदार्थों के क्षय के कारण और भी प्रभावित हो रही है। प्रकृति उत्पादन क्षमता की एक निश्चित सीमा है। अतः मृदा का उत्पादकता मूल्य सुरक्षित रखने एवं पारिस्थैतिक संतुलन बनाये रखने हेतु उपयुक्त प्रविधि के प्रयोग की आवश्यकता है।

यदि साहित्य में प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों की बात की जाये तो आदिकालीन साहित्य से लेकर अद्यतन काव्य तक प्रत्येक कवि को प्रकृति अपनी ओर आकर्षित करती रही है। प्रकृति पर चेतना का आरोप कर कवि उससे बातें करता रहा है। उसके साथ अपने दुःख सुख , हास, परिहास की बातें करता रहा है। प्रकृति उसके साथ हंसती हैं, रोती है। प्रकृति उसके लिए एक ऐसी प्रेयसी है, जिसके साथ वह अपने मन की सभी बातें कर सकती हैं। यहां तक कि यदि कोई कली भी वृक्ष से टूटी तो कवि को अत्यन्त दुख हुआ। यथा–

> अरे कौन तुम दमयन्ति सी , इस तरू के नीचे सोई।
>
> हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या, अली नल सा निष्ठुर कोई।

छायावादी काव्य में तो प्रकृति पर चेतना का आरोप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। यहां प्रलय के दृश्य भी हैं और संयोग के क्षण भी । छायावादी कवि प्रकृति निरूपण से सम्पृक्त है। यथा–

> नेत्र निमिलन करती मानो, प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ।
>
> जलधि लहरियों की अंगडाई , बार बार जाती सोने।

अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रकृति पर जब भी कोई आपदा आती है या कोई ऐसा कारण बनता है जिसके कारण प्रकृति विकम्पित या भय उत्पन्न करती हैं तो भी कवि या लेखक को लेखन के कुछ बिन्दु दे देती है। पर्यावरण तो नितान्त संवेदनशील बिन्दु है। जो दुख सुख की तरह ही मानव जीवन में रमा हुआ है। हमारे वेद शास्त्र , पुराण इत्यादि सभी धर्म ग्रन्थ प्राकृतिक सुषमा एवं पर्यावरण से पूर्ण रूपेण सम्बद्ध हैं। कवि प्रकृति में स्वच्छ पर्यावरण का पक्षधर है। क्योंकि यदि पर्यावरण स्वच्छ होगा तो समाज स्वस्थ होगा। और यदि समाज स्वस्थ होगा तो एक अच्छे साहित्य की कल्पना की जा सकती है। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त जी साकेत महाकाव्य के पंचवटी सर्ग में स्वच्छ पर्यावरण का चित्रण करते हुए कहते हैंः–

> चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही थी जल थल में।
>
> स्वच्छ चांदनी बिछी हुई थी, अवनि और अम्बर तल में।

पुलक प्रकट करती थी धरती, हरित तृण के नोकों से।

मानों झीम रहे हों तरू भी , मस्त पवन के झोंको से ।

साहित्य तथा पर्यावरण अभिन्न हैं। परन्तु आज का पर्यावरण सबसे अधिक जनसंख्या वृद्धि से ही त्रस्त है। आज प्रविधि सम्पन्न मानव की कुछ महत्वाकांक्षाए एवं तीव्र आर्थिक प्रगति की आशा के कारण पर्यावरणीय सन्तुलन ही विक्षुब्ध हो गया है। जिससे स्वयं मानव के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। ओजोन परत का विघटन भूमण्डलीय ताप, अम्ल वर्षा , मानव ज्वालामुखी, प्रदूषण गुम्बद, उष्मादीप, जल वायु ध्वनि एवं मृदा प्रदूषण आदि समस्यायें मानव के भविष्य को चुनौती दे रही हैं। जिससे मानव अपने ही आविष्कारों एवं रचनाओं से भयभीत हो गया है तथा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन के प्रति सचेष्ट होता जा रहा है। इसका तात्पर्य विकास कार्यों के लिए पृथ्वी के नव्य एवं अनव्य संसाधनों का विभिन्न रूपों में उपयोग करने, विभिन्न दुर्लभ एवं बहुमूल्य संसाधनों का परीक्षण करने से है।

अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप प्राकृतिक संशाधनों की मांग में वृद्धि हुई है जिसके लिए विकासात्मक क्रियाओं में लापरवाही पूर्वक आधुनिक प्रविधियों का प्रयोग किया गया है, जिसका प्रतिफल भूमण्डलीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, एवं स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय विघटन है। विकासात्मक पर्यावरण की गुणवत्ता में परिवर्तन जैसी पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है जिनका तत्कालीन प्रभाव मानव जीवन की गुणवत्ता में हास के रूप में प्रकट हो रहा है।

अतः संतुलित एवं समन्वित विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण हेतु यह आवश्यक है कि पर्यावरण विघटन के क्षेत्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाये।

वर्तमान विश्व की यह तत्कालिक आवश्यकता है कि पर्यावरण अनुकूलित पारिस्थैतिक मैत्रीपूर्ण विकास किया जाये। जिससे पर्यावरण संरक्षण हो सके, साथ ही तीव्र गति से बढती जनसंख्या का भरण–पोषण भी हो सके। जनसंख्या नियंत्रण, संघृत विकास एवं पारिस्थिैतिक संरक्षण ही वर्तमान विश्व की आवश्यकता एवं अंग है तथा मानव के भविष्य के लिए अनिवार्य भी है।

''मनुष्य प्रकृति से है, प्रकृति मनुष्य से नहीं''।

सन्दर्भ सूची–

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला –अनामिका

जयशंकर प्रसाद–कामायनी (आशा सर्ग)

मैथिलीशरण गुप्त– साकेत (पंचवटी सर्ग)